REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 8 | MAY - 2018

जाम्भोजी की शिक्षाओं के सामाजिक सरोकारों की विवेचना

डॉ. विदुषी आमेटा[1], इंदिरा विश्नोई[2]
[1]सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी–विभाग,
माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)
[2]शोध छात्रा, हिन्दी–विभाग, माधव विश्वविद्यालय,
पिण्डवाड़ा, सिरोही (राज.)

बिश्नोई समाज के संस्थापक गुरू जाम्भोजी का आविर्भाव वर्तमान राजस्थान प्रांत के नागौर जिले में पीपासार गाँव में हुआ था। उनके अवतार का काल 1451–1536 ई. माना जाता है। इस काल में दिल्ली की तुर्की–अफगानी सल्लनत का पतन होकर मुगलों का आगमन हो चुका था। उनके काल में मुस्लिमों के आक्रमण तत्कालीन जोधपुर राज्य में भी हुए थे और सूफीवाद का प्रसार भी इन इलाकों में हुआ था। उनके आविर्भाव के काल में मारवाड अंचल में सामंती प्रथा का बोलबाला था और समकालीन मुस्लिम शासकों की नीति मूर्तिपूजा विरोधी मंदिरों को विनष्ट करने की तथा हिन्दू प्रजा को इस्लाम स्वीकार कराने की रहती थी। हिन्दू जनता में भी छूआछूत की भावना बलवती थी और कर्मकाण्ड की प्रथा से आम आदमी का विश्वास डिगने लगा था। उथल–पुथल भरी राजनीतिक स्थिति और सामाजिक भेदभाव भरे माहौल में जाम्भोजी का जन्म हुआ था।

संतों के माध्यम से समय और परिस्थिति के अनुरूप सामाजिक सरोकारों की अगुवाई होती रही है। संत उन जनकल्याणकारी भावनाओं से ओतप्रोत रहते हैं, जो प्रकृति से उन्हें मिलती है। माना जाता है कि गुरू जाम्भोजी 34 वर्ष की आयु तक वन प्रदेशों में गायें चराने जाते थे। यह स्वाभाविक ही है कि उनके साथ और भी ग्वाले वन प्रदेश में जाया करते होंगे। समकालीन परिस्थिति और सामान्यजन के कष्टों–परेशानियों से रूबरू हुये बिना यह संभव नहीं लगता कि कोई विवेकी चिन्तनशील मन, एकाएक बोलकर ऐसे सामाजिक उद्‌गार प्रकट कर सकता है, जो समाज के एक बड़े तबके को दीर्घकाल तक और स्थायी रूप से प्रभावित करते रहे। विचार और विश्वास समय के साथ जनता से लगातार सम्पर्क के बाद ही स्थिर हो पाते हैं। जांभोजी के लिए यह कथन सत्य है कि उन्होंने सन् 1485 ई. के पहले, उपदेशों को प्रकट करने के पूर्व, जनसामान्य से गहन विचार विमर्श और गंभीर मनन किया था क्योंकि उन्होंने वन अंचल में गायें चराते समय लम्बी दूरी की, दुरूह वन प्रदेशों में यात्रायें भी की थी।

भक्तिकाल और गुरू जाम्भोजीः

भक्तिकाल का प्रभाव 14 वीं – 16 वीं सदी के बीच विशेष रूप से रहा था क्योंकि इस पूरे काल में इस्लाम, हिन्दुवाद पर और सनातन धर्म की मान्यताओं पर, सत्ता के बल पर, लगातार जोरदार तरीके से आक्रमण कर रहा था। आम जनजीवन एक और सत्ता के अत्याचार से और दूसरी ओर सनातन धर्म की जड़ता और सामाजिक भेदभाव तथा छुआछूत की प्रवृत्ति से दुःखी था। अतः इस काल के नाथ सम्प्रदायवादी, सूफीवादी, समाज पर अपना प्रभाव डालने में सफल हुए और कबीर, नानक, धन्ना, पीपा और रैदास आदि संतों ने इन सामाजिक सरोकारों को अपनी वाणी से गति दी थी । विश्नोई समाज के पूज्य गुरू जांभोजी भी समकालीन परिस्थिति पर मनन–चिंतन करने के बारे में उक्त संतों की वाणी से प्रभावित हुए थे। प्रसिद्व इतिहासकार सतीशचन्द्र का कथन है कि संतो ने जो बीज बोएं, उन्हें फलने – फूलने के लिए बहुत उर्वर भूमि मिली।

राजपूत राजाओं की हार और तुर्क सल्तनत की स्थापना के बाद ब्राह्मण प्रतिष्ठा और शक्ति से वंचित हो गये थे। फलस्वरूप नाथपंथ जैसे आन्दोंलनों ने जाति–प्रथा और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी तो उनकी लोकप्रियता बढ़ी। इसी समय समानता और भाईचारे के इस्लामी विचार फैले। जिनका उपदेश सूफी संत दे रहे थे। लोग कर्मकाण्डों और तीर्थाटनों वाले पुराने धर्म से संतुष्ट न थे और ऐसा धर्म चाहते थे, जो उनकी बुद्वि और मनोकामना दोनों को संतुष्ट कर सके। 15वीं और 16वीं सदियों में उतरप्रदेश में भक्ति आन्दोंलन इन्ही कारणों से लोकप्रिय हुआ था। गुरू जांभोजी भी इन्हीं परिस्थितियों के मध्य सामाजिक आधार लेकर प्रकट हुए थे। गुरू जाभोजी भी भक्ति काल के विशिष्ट नक्षत्र थे। चुँकि उनकी मरूभाषा बोली का साहित्य अभी पूरी तरह अनुवादित होकर और विवेचित होकर साहित्य जगत के सामने नहीं आया है। इसलिए अभी भक्ति काल के साहित्य इतिहास में उनके साथ ठीक से न्याय नही हो पाया है। अन्वेषण करने पर गुरू जांभोजी महाराज का भक्तिकाल के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान स्थापित हो सकता है।

जांभोजी की शिक्षाएँ–

गुरू जांभोजी के सामजिक सरोकारों एवं नैतिक शिक्षा से भरे विचारों का वर्णन गुरूजी की जंभवाणी या सबदवाणी में मिलता है। विश्नोई समाज का यह प्रेरणास्तोत्र एवं अत्यंत पवित्र ग्रंथ है। सनातन धर्म में गीता की जो मान्यता है, विश्नोई समाज में जंभवाणी की वही मान्यता है। विश्नोई समाज का यह आचरण ग्रंथ आज भी देश के समाज को उसी तरह बाँधकर रखने में सक्षम है। जैसा उसने 15 वीं और 16 वीं सदी में किया था। ऐतिहासिक सार की स्थिति से गुरूजी की निम्न प्रमुख शिक्षाएं थी।

1. बच्चा होने पर 30 दिन तक पत्नी से दूर रहे।
2. मासिक धर्म की स्थिति में 5 दिन तक पत्नी से दूर रहे।
3. प्रतिदिन स्नान करे, हवन करे और आरती करें।
4. पानी शुद्व और साफ पीये।
5. अपने काम और परिस्थिति से संतुष्ट रहना सीखें।
6. चोरी न करे, झूठ न बोले, क्रोध न करे, हिंसा न करे और सोचकर बोले।
7. किसी की निंदा न करे ।
8. हरे – भरे वृक्ष न काटे।
9. भेड, बैल आदि को बंध्या न करे।
10. गौ धन की रक्षा करे और उनका वध न करे।
11. नीले वस्त्र धारण न करे।
12. परोपकारी पशुओ की रक्षा करना.
13. अमावस्या का व्रत रखें
14. नशा और नशीले पदार्थो से दूर रहे।
15. मोह न करे और दया करने की आदत डाले।
16. आपस मे ंवाद – विवाद न करे और न झगडे ।

गुरूजी हिन्दू–मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे, उन्होंने हिन्दू और मुस्लिम के आडम्बरपूर्ण व्यवहार करने वालों पर कठोर प्रहार किए। दोनों समाजों में प्रेमभाव विकसित हो इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को उनका देव एवं पीर बताया। संत का मानना था कि बिना गुरू कृपा के मोक्ष मिलना संभव नही है और वे सदैव गीता के कर्मवादी कृष्ण को मानते थे। जंभवाणी में यह सब सार तत्व है। गुरू जांभोजी का प्रभाव किसान, खेतिहर, श्रमिकों पर अधिक पड़ा था। अतः इस पंथ मे जाट, ठाकुर, बनिक आदि सभी मध्य वर्गीय जातियाँ शामिल हो गई थी।

सामाजिक सरोकारों की विवेचना–

जांभोजी ने अपने उपदेशों में नारी के सम्मान एवं उसके स्वास्थ्य की देखरेख की कामना की है। इससे यह आशय अवश्य निकलता है कि तत्कालीन समाज में विशेषतया मारवाड़ के ग्रामीण क्षेत्र में नारी की स्थिति

असहज थी। यह असहज स्थिति उस समय की बाल विवाह की प्रथा के कारण भी हो सकती है। वैसे नारी को तत्कालीन समाज मे भोग की वस्तु तो माना ही जाता है। इन परिस्थितियों के कारण ही गुरूजी ने समाज को नारी का सम्मान करने और उसके स्वास्थ्य की चिंता करने का उपदेश दिया। जांभोजी ने अपने उपदेशों मे आदमी के नियमित जीवन, स्वास्थ्य और आचरण पर बहुत जोर दिया था। वे चाहते थे आदमी नशा न करें। सत्य आचरण पर चले, प्रतिदिन स्नान करे, और उपवास व हवन करें।

इन उपदेशों के माध्यम से वे बिखरे समाज को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास कर रहे थे। बिखरे समाज में वे आत्मबल और आत्मसंयम तथा उसके विवेक को जगाना चाहते थे। जांभोजी के ये उपदेश या नैतिक शिक्षाएं मध्यम वर्गीय किसान और गरीब ग्वालों तथा खेतिहरों के लिए थी । जिनकी रोटी, धरती के धन, वन के धन और पशुधन से निकलती थी। वास्तव में जांभोजी महाराज तत्कालीन समय में इस वर्ग को ही नेतृत्व प्रदान कर रहे थे। मारवाड अंचल में जन जीवन प्रकृति की कठोरता के कारण वैसे ही कठिन होता था और वहाँ प्रायः अकाल भी पड़ते रहते थे और राजपूतों में लगातार लडने–झगडने की प्रवृति भी आम रूप मे पाई जाती थी। इन लडाइयों के बीच गरीब और आम खेतिहर किसान व ग्वाले पीसते थे। इन विपरित परिस्थतियों में सन्मार्ग बनाने का कार्य जांभोजी के उपदेशों ने किया था, और लोगो को नये आचरण के सरोकारों के माध्यम से सामाजिक बंधन में बांधने का प्रयास किया था।

गुरूजी ने अपने उपदेशों मे मारवाड़ी में प्रचलित मरू भाषा अर्थात मारवाडी बोली का उपयोग किया था। यह मारवाड ही सामान्य गरीब खेतिहर की भाषा थी। लोग उसे आसानी से समझ लेते थे और उससे अधिक प्रभावित भी होते थे। गुरूजी ने सद्गृहस्थी में रहते हुए ईश्वर के निरंजन स्वरूप की उपासना पर जोर दिया था।

वे मूर्तिपूजा के विराधी थे। ऊँच–नीच और छुआछूत में उनका विश्वास नहीं था। उन्होनें कबीर की तरह हिन्दू – मुसलमानों दोनों को आडम्बरपूर्ण व्यवहार करने के कारण फटकार लगाई थी। गुरूजी का कहना था–

1. सुण रे काजी सुण रे मुल्ला , सुण रे बकर कसाई।
   किण री थरपी छाली रोसों, किण री गाडर गाई ।
2. धवणा धूजे पाहन पूजे, व फरमाई खुदाई।
   गुरू चेले के पाय लागै, देखो लोग अन्याई।।

जंभवाणी को आधार मानकर तत्कालीन मारवाड के सामाजिक जीवन का भी अध्ययन किया जा सकता है। वास्तव में यदि देखा जाए तो बकरा या बकरी, भेड आदि जानवर समुदाय विशेष के द्वारा बहुत हलाल होते थे और मारवाड में ये पशु दूध और ऊन प्रदाता के रूप में गरीब की रोटी थे । उनके उपदेश केवल समाज के सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास ही नहीं कर रहे थे, बल्कि वे गरीब की रोटी और जीवन–यापन का समाधान भी खोजने का प्रयास कर रहे थे।

जांभोजी का जीवनवादी प्रकृति प्रेम –

जांभोजी का प्रकृति प्रेम आज दुनिया का आदर्श, पर्यावरण प्रेम का प्रतीक बन गया है। जिस भू–भाग में गुरूजी का जन्म हुआ था, वह संभाग मध्य प्रदेश का ही हिस्सा था, वहाँ अकाल पडते ही रहते थे। आम आदमी को रोटी के भी लाले पड जाते थे। गुरूजी ने अपने चिंतन से जाना कि प्रकृति और मानव सहयोगी पशुधन की रक्षा किए बगैर जनता का उद्धार इन भागों में नहीं हो सकता है। वे अपने प्रकृति रक्षा के उपदेशों के माध्यम से खेतिहर श्रमिक गरीबों का एकीकरण चाहते थे। उन्होंने अपने ग्वाले के रूप में बिताए सालों के कार्यकाल में मीलो और कोसों दूर दुरूह रास्तों के बीच पैदल चलकर यह जाना कि पशुधन कितनी मेहनत के बाद अपने भोजन के लिए तिनका पाता है। यदि पशुधन, प्रकृतिधन और आम मानव के बीच सेतु के रूप में मित्रभाव बन जाए तो जनजीवन का क्रंदन रूक सकता है। इसलिए आज के समय में गुरूजी के अनुयायियों ने प्रकृति की रक्षा, वृक्ष रक्षा, पशुधन रक्षा को अपने धर्म के रूप में मान लिया है।

जांभोजी का मानना था कि गाय हमें दूध देकर हमारे जीवन की रक्षा करती है और हम उनकी हत्या कर उनका मांस खा जाते हैं। उन्होंने मुसलमानों के तबके को इसके लिए खूब फटकारा था । उनका कथन था

चरि – फिरि आवै सहजि दुहावै, तिहिं का खीर हलाली।
तिंहके गलै करद क्यों सारो ?
थे पढि गुणि रहिया खाली।

बैल भेड आदि पशुधन को बधिया कर उनकी प्राकृतिक प्रजनन क्षमता को रोक देने की क्रिया का गुरूजी ने विरोध किया था । हिंसा का वे पूरी तरह से विरोध करते थे। ऐसा लगता है कि मरूप्रदेश में इस काल में मुस्लिमों की बढती संख्या और सामंतवादी प्रवृति इस प्रकार की पशु हत्याओं के लिए जिम्मेदार थी। सीधे–सीधे गरीब आमजन से पशुधन, सत्ता की दम पर जबरन छीना जाता रहा था। इससे गरीब को दुहरा नुकसान था। उसकी रोटी के साथ उसे आर्थिक हानि भी झेलनी पडती थी। इसी कारण गुरूजी ने आम–गरीब खेतिहर के जीवन की रक्षा के लिए पशुधन की रक्षा का संदेश अपने उपदेशों में दिया था।

यदि जीवन चिंतन की दृष्टि से परखा जाये तो तत्कालीन समय में मरूप्रदेश में पर्यावरण की रक्षा नीति पर चलकर ही, खाना–पीना, गाय–गोबर, दूध–पानी आदि प्राप्त किया जा सकता है। जांभोजी की जीवनीय और सामाजिक समझ बहुत गहरी तथा सूझबूझ भरी थी। इसे केवल आध्यात्मिक उपदेश या भक्तिकाल का दर्शन मानकर नहीं पढा जाना चाहिए। जांभोजी समय परिस्थिति और भविष्य सबको समझ रहे थे। पर्यावरण रक्षा के सिद्धांतों में उनकी आज की भविष्य दृष्टि छिपी हुई थी। सन 1730 ई. की वह जोधपुर महाराजा अजयसिंह के काल की घटना पर आज विश्व में चितन हो रहा है। पर्यावरण सुरक्षा के लिए यह बलिदानी घटना, आज के पर्यावरण चिंतकों के भाषणों का श्रेष्ठ उदाहरण बनकर उभरी है, इस घटनाक्रम में विश्नोई समाज के 363 महिला–पुरूषों ने खेजडी के पवित्र पेड़ की रक्षा के लिए सत्ता की तलवार से सहर्ष कटना स्वीकार कर लिया था । आज भी विश्नोई समाज अपने इस आध्यात्मिक कर्तव्य पर दृढ है। कहा जाता है–

सीस सौपा अर नही कंपा, मरण हूं मत को डरो।
होय होतब कौल गुरू कै, सिर सूपों साको करो।

आज विश्नोई समाज बहुल गाँवों में कोई वृक्ष काटने की और जानवरों की हत्या की हिम्मत नही जुटा सकता है। विश्नोई समाज का पर्यावरण प्रेम आज देश के लिए संदेश के रूप में है, जो देश और समाज के जीवन को बचा सकता है और गरीब की रोटी के आर्थिक गणित को भी सँवार सकता है। जांभोजी भगवान श्रेष्ठवीर, समाज के रक्षक की आज विश्व के भविष्य दृष्टा के रूप में पूजे जाने की आवश्यकता है।

माना जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, अर्थात वह अपने समय के सामाजिक इतिहास का स्वाभाविक और वास्तविक लेखा होता है । तत्कालीन मरूप्रदेश के भागों में क्या–क्या सामाजिक विकृतियाँ थी, आम व्यक्ति का सामाजिक–धार्मिक जीवन किस प्रकार बिखर रहा था और इसका निराकरण किस तरह संभव था? इसको सुलझाने के उपाय ही जांभोजी ने अपने उपदेशों के माध्यम से प्रकट किये थे, वे समय के और समाज के चेतन पारखी थे। आध्यात्मिक धरातल पर जांभोजी का मूल्यांकन भक्ति साहित्य के काल की विशिष्ट घटना हो सकती है। बिश्नोई समाज के लिए वह भगवत दर्शन के रूप में है परन्तु, इतिहास के परीक्षण की दृष्टि से वह इससे एक कदम आगे, समकालीन मरूप्रदेश के आम जनजीवन के, ग्राम्य परिवेश के, प्रकृति रक्षा के क्षेत्र में आई धुन्ध के, मानव आचरण के, सामाजिक सोच को बदलने का एक सार्थक तथा सबल प्रयास थी। गुरू जाम्भोजी महाराज तत्कालीन समाज के सरोकारों के उसी प्रकार नेता थे, जिस प्रकार कबीर, नानक, दादू आदि हुए। गुरू जाम्भोजी की शिक्षायें–उपदेश, सामाजिक मूल्यों की चेतना का इतिहास है। विद्वान वीरेन्द्र मोहन का कथन है–

भक्त कवियों का मूल्यबोध सामाजिक यथार्थ से उपजा है। अतः सामाजिक अन्तर्द्वन्दों तथा सामाजिक आचार विचारों का स्पष्ट प्रतिबिम्ब उनके काव्य में उपलब्ध है। सामाजिक परम्पराओं की लौकिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्वीकृति के बावजूद सामन्ती परम्परा में विकसित हुए तथा सामन्ती हितों के पोषक मूल्यों के प्रति विरोध भावना यहाँ स्पष्ट परिलक्षित होती है। धर्म तथा भक्ति का स्वर प्रधान होने के साथ ही मनुष्य के भौतिक तथा लौकिक जीवन की स्वीकृति प्रदान करने के कारण भक्तिकाव्य मनुष्य जीवन का काव्य हो गया है।

अतः गुरू जाम्भोजी की सबदवाणी और सम्पूर्ण जाम्भाणी साहित्य केवल बिश्नोई समाज का आध्यात्मिक–धार्मिक दर्पण भर नहीं है। वह तत्कालीन समाज के सामजिक–सरोकारों का भी इतिहास है। इस दृष्टि से इस संत–साहित्य के पूर्ण सरोकारों के व्यापक विवेचन की आवश्यकता है। इस बात की भी आवश्यकता है, कि सम्पूर्ण जाम्भाणी साहित्य का हिन्दी अनुवाद सहज रूप में पाठक संसार के सामने लाया जाये। सहज अनुवाद के माध्यम से ही, हम तत्कालीन मरूप्रदेश के सामाजिक स्थिति का ठीक से मूल्यांकन कर सकते हैं और हम यह जान सकते हैं, कि बिश्नोई समाज में 'प्रकृति स्नेह' के लिए अपार धीरज, साहस और दृढ़ता कहाँ से आई थी ? हम पूरे विवेचन के साथ समकालीन संतों के साहित्य को सामने रखकर गहराई से गुरू जाम्भोजी की शिक्षाओं के अनेक नवीन अर्थ खोज सकते हैं। इस विषय में अभी अनेक सार्थक संवादों एवं तार्किक बहसों की आवश्यकता है।

संदर्भ –ग्रंथ

1. डॉ. मदनकुमार जानी– राजस्थान गुजरात के मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि, मथुरा, 1971, पृ. 46–47
2. परशुराम चतुर्वेदी– हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास , भाग 4, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सं 2025, पृ. 209
3. डॉ. महीपसिंह– आदि ग्रंथ में संग्रहित संत कवि, दिल्ली 2003, पृ. 27–68
4. डॉ. मदनकुमार जानी– राजस्थान गुजरात के मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि, पृ. 130–132